नारी जागरण और राजाराम मोहन राय

डॉ0 नीता,
एसोसिएट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
नारी शिक्षा निकेतन,
स्नात्कोत्तर महाविद्यालय,
लखनऊ।

''हे राममोहन आज एक शताब्दी बाद
सारा देश तुम्हें प्रणाम कर रहा है।
मृत्यु का आवरण भेद कर अपना अक्षय दान देते जाओ
जरा–जीर्ण में जगाओ प्राणों का स्पन्दन
अपनी आत्मा के स्पर्श–मणि से व्याप्त मूढ़ता दूर करो,
अभिनव–शक्ति का करो संचार।''

अनादिकाल से वर्तमान तक देशकाल एवं परिस्थिति के अनुसार समाज में समय–समय पर स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन होते रहे हैं तथा उनके उत्थान के लिए माँग भी उठती रही हैं आर्यों के भारत में आने के प्रारम्भिक दिनों, पूर्व वैदिक काल में स्त्री तथा पुरुषों को समकक्ष माना जाता रहा है और यह स्थिति लगभग उत्तर वैदिक काल तक चलती रही। इस दौरान स्त्रियाँ सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक कार्यों में पुरुषों के साथ बराबरी की भागीदारी करती रही हैं। हिन्दू शास्त्रों में भी उन्हें शक्ति, धन, विद्या और अन्न का प्रतीक माना जाता रहा है। स्मृतिकाल में ब्राह्मण धर्म में कट्टरता के कारण पुरुषों ने अधिकारों की प्राप्ति की लालसा में स्त्रियों के अधिकारों का दायरा सीमित कर दिया और स्त्रियों को मात्र पुरुषों का आदेश मानने वाली अनुचरणी बना दिया गया। मध्यकाल तथा मुस्लिम काल में भी स्त्रियों की स्थिति और खराब हो गई जिसमें सुधार के प्रयास आंग्ल शासन काल में किये गये किन्तु यह सुधार तभी किये गये जबकि सामाजिक तथा धार्मिक सुधारकों ने इसकी माँग की।[1]

18वीं शताब्दी के अन्त में स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त निम्न थी। उनको सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक क्षेत्र में काम करने की स्वतंत्रता तथा घूमने पर प्रतिबन्ध था। समाज में अनेक ऐसी कुप्रथाएँ थीं, जिनके कारण स्त्रियों की दशा बदतर होती गई। मध्यकाल से ही बाल विवाह का प्रचलन हो गया था। 19वीं शताब्दी तक यह प्रथा प्रचलित थी। इसके परिणामस्वरूप स्त्रियों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और समाज में बाल–विधवाओं की संख्या बढ़ने लगी। बंगाल में इस प्रथा ने भयकर रूप धारण कर लिया था। विधवाओं को पुर्नविवाह करने की अनुमति नहीं थी। उनके भोजन कपड़ों, खान–पान सब पर प्रतिबन्ध थे। उनको सादा जीवन जीना पड़ता था। बंगाल में विधवाओं को अशुभ माना जाता था।[2]

समाज में देवदासी प्रथा प्रचलित थी। मंदिरों में अनेक कुंवारी कन्याओं को दानकर दिया जाता था। दक्षिण भारत के राज्यों में

इस प्रथा का अधिक प्रचलन था। यहाँ देवदासियों को मंदिर के पुजारियों को प्रसन्न करने के लिए हर कार्य करना होता था। महाराष्ट्र के अनेक मजबूर कन्याओं को मंदिर के लिए समर्पित भावना से काम करना पड़ता था। इन्हें 'मुरालिस' कहा जाता था। जो जीवन भर अविवाहित रहती थी। यह प्रथा उत्तर तथा मध्य भारत में भी अनेक स्थानों पर प्रचलित हो गई थी, जहाँ व्यावसायिक नर्तकियों को 'यवीन' कहा जाता था।[3]

हिन्दू समाज में विशेषकर उत्तर भारत की उच्च जातियों में पर्दा प्रथा का प्रचलन था। मुस्लिम प्रभाव के कारण यह प्रथा प्रचलन में आई। बहुविवाह का भी प्रचलन था। यह प्रथा हिन्दू तथा मुसलमान दोनों में प्रचलित थी। बड़े जमींदारों, राजवंशों तथा धनाड्य परिवारों में बहुपत्नी प्रथा अपने भीषण रूप में प्रचलित थी। इस प्रथा के कारण स्त्रियों का जीवन तो नष्ट हुआ ही साथ ही समाज में व्यभिचार और अनैतिकता का बोलबाला हो गया।

राजस्थान, बंगाल तथा मध्य उत्तरी भारत में उच्च हिन्दू घरानों में सतीप्रथा भी प्रचलित थी। दक्षिण भारत में सती प्रथा का प्रचलन नहीं था। मृत पति की चिता के साथ उसकी पत्नी को जला देना सती कहलाता था। मराठा पेशवाओं, सम्राट अकबर, जहाँगीर और औरंगजेब, सिक्ख गुरू रामदास, श्री रामपुर के मिशनरियों, चन्द्र नगर के फ्रांसीसियों तथा चिनसुरा के डचों ने इस कुप्रथा को जड़ से हटाने के लिए कई प्रयास किए। लेकिन इन कोशिशों के बावजूद यह चली आ रही थी और 17–18वीं शताब्दी में जब देश में अराजक स्थिति विद्यमान थी, तो यह पैशाचिक प्रथा और भी जोरों पर थी। इसका प्रकोप मुख्यतः उत्तरी–पूर्वी भारत और बंगाल क्षेत्र में अधिक था। 1510 में पुर्तगाली इलाकों में अलबुकर्क ने सती–प्रथा पर निषेधाज्ञा जारी करने की कोशिश की थी, बाद में डच और फ्रांसीसियों ने इसकी रोकथाम के लिए कुछ प्रयास किए थे। यह घिनौनी प्रथा पूरे हिन्दू समाज के लिए कलंक का टीका थी। 1770 से 1780 ई0 तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी बम्बई प्रेसीडेन्सी में इसके उन्मूलन के लिए कई प्रयास किये किन्तु जन असंतोष के भय से कम्पनी सरकार इस सम्बन्ध में ठोस कदम उठाने से बचती रही। भारतीय नारी की दयनीय दशा मध्ययुगीन काल से ही चली आ रही थी। अठारहवीं सदी के अन्त में यह अवस्था विद्रूपता की चरम सीमा पर थी।[5]

1815 से 1818 तक निम्न जिलों में हुई सती की घटनाओं की सूची इस प्रकार है–

	1815	1816	1817	1818	योग
कलकत्ता डिवीजन	253	189	442	544	1528
ढाका	31	24	52	58	165
मुर्शिदाबाद	11	21	42	30	104
पटना	20	29	49	57	155
बनारस	48	65	103	137	353
बरेली	15	13	19	13	60
	378	441	707	839	2365

6

1805 से 1830 तक 25 वर्षों के दौरान ब्रिटिश सरकार ने किस प्रकार धर्म के नाम पर चलती इस नारी हत्या की प्रथा को बन्द किया। यह एक लम्बा इतिहास है।[7]

भारतीय नारी का सम्पूर्ण जीवन अनेक प्रकार के दुःखों से घिरा रहता था। बाल विवाह, जाति प्रथा, कन्या वध, बहु विवाह, छुआ–छूत, सती प्रथा ये सभी लम्बे समय से अनवरत रूप से चली आ रही थीं। धर्मशास्त्रों का भंवर जाल, पुरोहितों के पाखण्ड से न सिर्फ गतिमान हो रहा था, अपितु सम्पूर्ण स्त्री जीवन कठोरता के कारागार में कराह रहा था।[8]

आधुनिक भारत में स्त्री की पराधीनता पर सोचने वाले पहले व्यक्ति राजाराम मोहन राय थे। भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में स्त्री पक्ष में तात्विक विचार करने वाले राजाराम मोहन राय का योगदान ऐतिहासिक है। भारतीय समाज को जागरूक करने और उसमें सुधार लाने के लिए शिक्षा की अनिवार्यता पर उन्होंने जोर दिया। उन्होंने स्त्री शिक्षा के साथ ही समाज में वैज्ञानिक चेतना का प्रसार, सती प्रथा जैसे अन्धविश्वासों का निर्मूलन एवं धार्मिक रूढ़ियों की जगह उदार आध्यात्मिक तथा मानवतावादी चिन्तन को प्रश्रय देते हुए राष्ट्रीय नवजागरण की प्रक्रिया को गतिशील बनाया। भारतीय जन–मानस में नवजागरण का सन्देश बंगला, हिन्दी, फारसी और अंग्रेजी में प्रकाशित 'बंगदूत' जैसे पत्रिकाओं के माध्यम से उन्होंने पहुँचाया। अपनी पत्रिका 'संवाद कौमुदी' के द्वारा सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ लेखनी चलायी।[9] इनमें सबसे घृणित रीति जो धर्म के साथ ही जुड़ी थी, वह थी 'सती प्रथा'। समाज सुधार के लिए राजाराम मोहन राय ने जो आन्दोलन छेड़ा, उनमें सबसे महत्वपूर्ण और सफल आन्दोलन जो राममोहन के नाम के साथ सदा जुड़ा रहेगा वह था 'सती प्रथा' के विरुद्ध राममोहन का संघर्ष।[10]

भारतीय पुनरुत्थान काल में राजा राममोहन राय की गिनती प्रथम पुनरुत्थान कर्ताओं में की जाती हैं। वह आडम्बर और भेदभाव के सर्वथा विरोधी थे। सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में सर्वप्रथम उन्हें अपने परिवार में ही संघर्ष करना पड़ा। राजाराम मोहन राय ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सती प्रथा के विरुद्ध अपने परिवार की किसी स्त्री को क्रन्दन करते देखा। वह विधवा अग्नि की यातनाओं को देखकर आग में सती नहीं होना चाहती थी। अपनी आँखों से सती प्रथा के कार्यों को जब उन्होंने देखा तब उनका कारुणिक हृदय इस प्रकार की अमानुषिक दुर्घटनाओं से शान्त न रह सका। हिन्दू धर्म के लिए यह अत्यन्त लज्जा की बात थी। सच्चे समाज सुधारक राजाराम मोहन राय इस प्रकार के कलंक को कैसे सहन कर सकते थे। उन्होंने सरकार के माध्यम से सती प्रथा के विरुद्ध सबसे पहले कदम उठाया।

'सती' का शाब्दिक अर्थ 'अमर' अथवा 'सत्य पर अडिग रहने वाली' है। वस्तुतः पति की मृत्यु के बाद स्त्री का उसकी चिता में बैठकर शरीरांत करना ही सती–प्रथा का व्यावहारिक–बोध है। ऐसा समझा जाता था कि ऐसा करके वह स्त्री अपने सभी पापों का क्षय कर लेती है और स्वर्ग को प्राप्त करती है। मिस्र के पिरामिडों, मृत राजाओं के साथ उनकी प्रिय पत्नियाँ परिचारिकाएँ आदि मृतक के जीवन को सुखी रखने के लिए दफना दी जाती थीं। ऐसी प्रथाएँ यूनान, रोम आदि देशों में थीं। आर्यों के भारत आगमन पर यह उनमें प्रचलित तो नहीं थीं परन्तु इस विचार के अवशेष सम्भवतः उनमें पड़े थे और उन्होंने

इसे प्रतीक रूप में लागू किया। ऋग्वेद के 'अग्ने' या 'अग्रे' शब्द को लेकर मतभेद है। इसका अर्थ यह है कि स्त्री अपने मृत पति के शव के साथ लेटती है। तत्पश्चात उसे सम्बोधित किया जाता है कि **''नारी उठो, पुनः इस संसार में आओ।''** अथर्ववेद के अनुसार ही– **''नारी पति–शव के साथ चिता पर आरोहण करती है, परन्तु पुनः उसे उतर आने के लिए निर्देशित किया जाता है, तत्पश्चात प्रार्थना की जाती है कि वह स्त्री, पुत्रों एवं धन का उपयोग करते हुए समृद्धि का जीवन व्यतीत करे।''** स्पष्ट है कि वैदिक काल में यदि सती प्रथा का कोई रूप था तो वह प्रतीकात्मक ही था।[11]

भारतवर्ष में सती प्रथा का प्रचलन बहुत पहले से था।[12] अपने मौलिक रूप में सती–प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से विद्यमान रही है पर उस समय उसमें स्वेच्छा आवश्यक थी।[13] रामायण और महाभारत में ऐसे श्लोक अवश्य विद्यमान हैं, जिनसे सती प्रथा की सत्ता सूचित होती है। रामायण में वेदवती के ज्वलित जात वेदस (अग्नि) में अपने को गिरा देने का उल्लेख है।[14] महाभारत से स्पष्ट है कि पाण्डु की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी माद्री सती हो गई थी। कृष्ण के पिता वासुदेव की मृत्यु पर उनकी चारों पत्नियाँ देवकी, मद्रा, रोहिणी और मदिरा सती हो गयी थीं।[15] सिकन्दर ने जब भारत पर आक्रमण किया, तो इस देश के अनेक जनपदों में सती प्रथा प्रचलित थी। गान्धार और कठ जनपदों में इस प्रथा की सत्ता का उल्लेख ग्रीक विवरणों में विद्यमान है। चतुर्थ शती ई0 के लगभग यह प्रथा काफी प्रचलित हो गयी थी।[16]

पौराणिक साहित्य में भी सती प्रथा की सत्ता के प्रमाण विद्यमान हैं। विष्णु पुराण के अनुसार कृष्ण की मृत्यु के पश्चात उनकी आठों पत्नियों ने अपने पति के शव के साथ चिता में प्रवेश किया था। कृष्ण की इन पत्नियों में रुक्मिणी प्रमुख थीं। इसी पुराण में बलराम की मृत्यु हो जाने पर उनकी पत्नी रेवती ने अग्नि प्रवेश कर लिया था और पति की देह के सम्पर्क से अग्नि को भी शीतल अनुभव किया था। ब्रह्मपुराण में लिखा है कि पति के मर जाने पर सती साध्वी स्त्रियों के लिये यही एक मात्र गति है, कि वे भी पति के शव के साथ चिता पर आरूढ़ हो जाएँ। यदि पति की मृत्यु किसी देशान्तर में हो जाए, तो पत्नी को चाहिए कि उसकी पादुकाओं को साथ लेकर संशुद्ध रूप से अग्नि में प्रवेश कर ले। कृत्यकल्पतरु के अनुसार चिता में पति का अनुमन करने वाली स्त्री माता, पिता तथा पति, तीनों के कुलों को पवित्र करती है,। पति की मृत्यु हो जाने पर जब तक उसकी पतिब्रता स्त्री अपने शरीर को भस्म नहीं कर देती, वह शरीर से मुक्ति नहीं पा सकती।

प्राचीन अभिलेखों तथा पूर्व–मध्यकाल के अनेक ग्रन्थों में भी सती प्रचलन के अनेक संकेत पाये जाते हैं। सती प्रथा का प्रथम अभिलेखीय साक्ष्य 510 ई0 का एरन का लेख है। छठी सदी में जब हूणों ने भारत पर आक्रमण किये, तो उनसे युद्ध करते हुए सेनापति गोपराज की मृत्यु हो गई थी। गुप्त युग के एक अभिलेख में गोपराज की 'भक्ता, अनुरक्ता, प्रिया एवं कान्ता' भार्या द्वारा उनके शव के साथ अग्नि राशि (चिता) में प्रवेश कर लेने का उल्लेख है। जोधपुर के एक अभिलेख के अनुसार गुहिल वंश की दो रानियों ने अपने पति के साथ अग्नि में प्रवेश कर सती धर्म का पालन किया था। जोधपुर क्षेत्र के ही एक अन्य अभिलेख में एक राजपूत सामन्त राजा का उल्लेख है, जिसका नाम राणुक था। उसकी पत्नी सम्पलदेवी थी, जो अपने पति के साथ सती हो गई थी। नेपाल के एक अभिलेख में राजा धर्मदेव के मर जाने पर उसकी पत्नी राज्यवती के अग्नि में प्रवेश का

उल्लेख है। बाणभट्ट के हर्षचरितम् के अनुसार स्थानेश्वर के राजा प्रभाकर वर्धन की मृत्यु हो जाने पर उसकी पत्नी चितारोहण के लिये उद्यत हो गई थी। काश्मीर के प्राचीन इतिहास राजत रगिणी में लिखा है कि राजा शंकर वर्मा के मर जाने पर उसकी पटरानी सुरेन्द्रवती तथा तीन अन्य रानियों ने अपने पति के साथ चिता में प्रवेश किया था। इसी ग्रन्थ के अनुसार राजा कन्दर्प सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी ने भी हुताशन (अग्नि) में प्रवेश कर अपने शरीर को भस्म कर दिया था। कथा– सरित्सागर में भी ऐसी कथाएँ विद्यमान हैं, जिनमें पत्नी का पति के शव के साथ चिता पर आरूढ़ हो जाने का वर्णन हैं इन सब प्रमाणों को दृष्टि में रखने पर यह स्वीकार करना पड़ता है कि ईस्वी सन् के प्रारम्भ होने से पूर्व ही भारत में सती प्रथा का प्रचलन शुरू हो गया था।

सम्भवतः यह प्रथा भी उसी समय शुरू हुई थी, जबकि विदेशी जातियों के निरन्तर आक्रमणों के कारण भारतीय महिलाओं के लिए अपने सतीत्व की रक्षा कर सकना सुगम नहीं रहा था। इन आक्रमणों के कारण भारत में जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई थीं, उनमें विधवा स्त्री को यही उचित प्रतीत होने लगा था कि वह भी पति के साथ अपने जीवन का अन्त कर ले। सती प्रथा के प्रचलन के संकेत बौद्ध साहित्य में मिलते हैं, न सूत्र ग्रन्थों और न कौटलीय अर्थशास्त्र में।[17] कालिदास ने इस प्रथा का संकेत 'पतिवर्त्मगा' पद द्वारा किया गया है। अभिलेखीय प्रमाण स्पष्टतः सिद्ध करते हैं कि समाज में सती प्रथा का प्रचलन था। यद्यपि यह प्रथा राजपूत एवं योद्धा वर्ग में अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित थी।[18]

अनेक प्राचीन ग्रन्थों में सती–प्रथा का विरोध भी किया गया है। महानिर्वाणतन्त्र के अनुसार जो स्त्री मोह के वशीभूत होकर मृतपति के साथ चितारोहण करती है, वह नरक गामिनी होती है। स्मृति चन्द्रिका के व्यवहार काण्ड में यह प्रतिपादित किया गया है कि सती होना एक जघन्य कार्य है। महाकवि बाणभट्ट ने तो सती होने को आत्महत्या तक की संज्ञा दी है, और यह लिखा है कि सती होकर स्त्री जो पाप करती है, उसका फल नरक गमन होता है। प्राचीन साहित्य में अन्यत्र भी इसी प्रकार के विचार पाये जाते हैं, जिनसे यह स्पष्ट है कि प्राचीन भारत के अनेक विचारक सती प्रथा के विरोधी भी थे। इस दशा में यदि इस प्रथा ने सार्वजनिक रूप न प्राप्त किया हो, तो यह सर्वथा स्वाभाविक था।[19] मृच्छकटिक में भी सती प्रथा की निन्दा की गयी है। निःसन्देह यह एक अमानुषिक एवं घृणित कार्य था जो स्त्री को सम्पत्ति से वंचित करने के लिए भी किया जाता रहा होगा।[20] प्राचीन समय में सती प्रथा का प्रचलन बहुत सीमित था और बहुसंख्यक स्त्रियाँ विधवा हो जाने पर या तो ब्रह्मचर्य तथा संयम के साथ जीवन व्यतीत किया करती थी और या पुनर्विवाह कर लेती थी।[21]

मध्यकाल में निम्नवर्ग के लोगों को छोड़कर हिन्दू विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति नहीं थी। विधवा को अपने पति के मृत शरीर के साथ जलना पड़ता था। ऐसा न करने पर उसे अपमानजनक और संकट का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। समाज ऐसी विधवाओं को घृणा की दृष्टि से देखता था। जो सती होने से इन्कार करती थीं। उन्हें लम्बे बालों को रखने की अनुमति नहीं थी, वे अच्छे वस्त्र और आभूषण धारण नहीं कर सकती थी। स्वेच्छा से सती होने की प्रथा प्राचीन थीं लेकिन कालान्तर में विधवाओं को उनकी इच्छा के विरूद्ध आग में जलने के लिए विवश किया जाता था। अधिकतर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य परिवार की स्त्रियाँ सती होती थी। ऐसा समझा जाता है कि बहुत सी स्त्रियाँ सती होने से इन्कार कर देती थी।

अल बरुनी ने लिखा है कि सती–प्रथा प्रचलित थी, लेकिन विधवा को जलने को मजबूर नहीं किया जाता था। उन्हें छूट थी कि वह या तो सारा जीवन वैधन्य में काटे या अपने मृत पति के साथ चिता में जल जाये। स्मृतियों के अनुसार विधवाओं को अपने मृत पति के साथ चिता में जल जाना अनिवार्य था। यदि मृत शरीर मिल सकता था, तो पत्नी चिता में जल जाती थी, इसे 'सहमरण' कहा जाता था। यदि पति की मृत्यु कहीं दूर स्थान में होती थी तो उसकी हड्डियों के साथ विधवा अग्नि में जल जाती थी। यदि हड्डी उपलब्ध नहीं होती थी, तो सांकेतिक रूप से मृत पति का पुतला बनाया जाता था और विधवा उस पुतले के साथ जल जाती थी। इस प्रथा को, 'अनु–मरण' कहा जाता था। इस प्रथा को 'सहगमन' और 'अनु–गमन' के नाम से भी पुकारा जाता था। धार्मिक ग्रन्थों में उल्लेख है कि सती हो जाने वाली स्त्रियों को स्वर्ग प्राप्त होता है और इस प्रथा को मानने के लिए बन्धन नहीं है। विधवा के लिए आत्मदाह ही कर्तव्य है। यह प्रथा अधिकतर राजस्थान में और समाज के उच्च वर्ग में प्रचलित थी। निम्न वर्ग की स्त्रियाँ इस प्रथा को नहीं मानती थीं। वे केवल अपने पति के मृत शरीर के साथ मकान की देहली तक जाती थीं और उसके बाद परिवार के पुरुष वर्ग के लोग उसे श्मशान घाट को ले जाते थे।[22]

अबुल फजल ने लिखा है कि लोगों में यह धारणा थी कि दूसरे संसार में पति की आत्मा को एक स्त्री की आवश्यकता होती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रथा भारत में प्राचीन काल में प्रचलित थी। यदि एक से अधिक पत्नियाँ हो तो मुख्य पत्नी अपने मृत पति के साथ एक चिता में और दूसरी सब पत्नियाँ अलग–अलग दूसरी चिताओं में जल जाती थीं। कभी–कभी सभी पत्नियाँ आपसी कटुता और वैमनस्य को भूलकर अपने मृत पति के साथ एक ही चिता में जल जाती थीं। सती होने से पहले विधवा स्नान कर सुन्दर वस्त्रों को धारण करके हाथ में एक नारियल और एक दर्पण लेकर घोड़े पर सवार होकर जुलूस में बाजे के साथ चलती थीं। जिसमें साथ में एक पुरोहित भी चलता था। स्थान का चुनाव किसी झाड़ी के निकट तालाब के किनारे किया जाता था। उस स्थान पर पहुँच कर विधवा अपने सुन्दर वस्त्रों को उतारकर एक सादा वस्त्र धारण करके अग्नि देवी की पूजा करते हुए आग की लपटों में समा जाती थी। उसी समय नगाड़े और रणभेरी बजाये जाते, जिससे लोगों का ध्यान उस हृदय विदारक दृष्टि से हट जायें इसके बाद दर्शक चिता में लकड़ी के लट्ठे फेंकते थे। जिससे कि विधवा घबराकर भाग न सके।[23] इब्नबतूता ने लिखा है कि 'तमाशा' देखने के लिए जन साधारण वहाँ इकट्ठा हो जाते थे। यह प्रथा इतनी प्राचीन थी कि मुस्लिम शासकों ने इसे रोकने का प्रयास नहीं किया। उन्हें ऐसा भय था कि यदि कानून बनाकर इसे रोका गया तो ईश्वर का क्रोध उनके ऊपर टूट पड़ेगा और वे नष्ट हो जायेंगें इब्नबतूता ने लिखा है कि दिल्ली के सुल्तानों ने एक नियम बनाया था कि विधवा को जलाने के लिए राज्य से एक अनुमति पत्र लेना अनिवार्य था। डॉ0 अशरफ का कहना है कि इसका उददेश्य यह था कि विधवाएँ कम संख्या में जलायी जायें और कुछ परिस्थितियों में अनुमति भी नहीं दी जाती। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि सभी को राज्य की तरफ से अनुमति दे दी जाती थी। इस अमानुषिक प्रथा को समाप्त करने के लिए कोई नियम नहीं बनाया गया। हुमायूँ ने साहस से काम लिया और यह आदेश दिया कि यदि विधवा अधिक उम्र के कारण सन्तान उत्पत्ति के योग्य नहीं है तो उसे चिता में जलाया नहीं जा सकता, चाहे वह स्वेच्छा से ऐसा करने के लिए तैयार हों बाद में हुमायूँ ने अपने आदेश में संशोधन कर लिया क्योंकि उसे समझाया गया कि किसी के धार्मिक कार्यों में हस्तक्षेप करने से उसके और उसके परिवार के ऊपर प्रलय गिरने की सम्भावना हो सकती है। हुमायूँ ने राज्य से ऐसा करने के लिये अनुमति पत्र लेना पहले की

तरह अनिवार्य रखा। राज्य के अधिकारी घटना स्थल पर मौजूद रहते थे जिससे वे इस बात की जाँच कर सकें कि विधवा पर आत्मदाह करने के लिये दबाव नहीं डाला गया है।

अकबर ने सती प्रथा को रोकने के लिये एक आदेश जारी किया। उसका निर्देश था कि सती होने के लिये किसी विधवा को विवश न किया जाये। जहाँगीर ने भी इस प्रथा को रोकने के लिये निर्देश दिया। उसका यह आदेश कम उम्र की विधवाओं को सती होने से रोकने के लिये था। सन् 1663 ई0 में औरंगजेब ने सती प्रथा को समाप्त करने के लिये आदेश दियां फिर भी जिन विधवाओं के कोई सन्तान नहीं थी, उन्हें सती होने की अनुमति दी जाती थी और जिनके सन्तान रहती थी उन्हें ऐसा नहीं करने दिया जाता था। इतने प्रयासों के बावजूद मुगलकाल में सती प्रथा को समाप्त नहीं किया जा सका।

इस प्रथा के बने रहने के कई कारण थे–

1. विधवा जो आत्मदाह करती थी उसकी प्रशंसा की जाती थी।
2. जो आत्मदाह से इन्कार करती थीं और समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाता था और उसे अपने प्रति निष्ठावान नहीं समझा जाता था।
3. समाज में विधवा की स्थिति इतनी खराब थी कि आग में जल जाना अपमान के जीवन से कहीं अच्छा समझा जाता था।
4. विधवा के ऊपर आर्थिक दबाव डाला जाता था कि वह आत्मदाह करे उससे कहा जाता था कि वह दहेज की रकम वापस करने या आत्मदाह में से कोई एक चुन ले। यदि आत्मदाह से इनकार करती थी तो दहेज की राशि उससे ले ली जाती थी और उसकी सन्तान का अधिकार भी इस धन से समाप्त हो जाता था।

राजस्थान में सती प्रथा का अधिक महत्व था। जब राजपूत सरकार युद्ध में हारने लगे थे तो अपने आदमियों को निर्देश देते थे कि उनके परिवार की स्त्रियों को मकान में बन्द कर उसमें आग लगा दे। कुछ उदाहरण ऐसे मिलते हैं कि स्त्रियों ने आत्मदाह अपने पतियों के प्रति निष्ठावान होने के प्रमाण में किये।

अबुल फजल ने सती होने वाली स्त्रियों का वर्गीकरण किया है–

- वे जो आत्मदाह के लिए विवश की जाती थी।
- वे जो स्वेच्छा से आत्मदाह करती थीं और अपने पति के प्रति विश्वसनीय होने का परिचय देती थीं।
- वे जो समाज में अपकीर्ति के विचार से ऐसा करती थीं।
- वे जो परिवार की रीति और परम्पराओं के अनुसार कार्य करती थीं।
- वे जो संबंधियों द्वारा उनकी इच्छा के विरूद्ध जबरदस्ती खींचकर आग में डाल दी जाती थीं।

सती प्रथा ने इस्लामी समाज को भी प्रभावित किया।[24] लगभग 2000 वर्षों तक इस प्रथा ने भारत को अंधविश्वास की बेड़ियों में बांधे रखा।

आधुनिक भारतीय इतिहास के प्रारम्भ में बंगाल, बम्बई और मद्रास की अंग्रेज कम्पनी सरकारों ने सती के मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया किन्तु फ्रांसीसियों एवं डचों ने अपने क्षेत्रों में इसको समाप्त करने के कुछ प्रयास किए पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

सर्वप्रथम 1789 में सती प्रथा पर अंकुश लगाने के लिए कुछ अंग्रेज जिलाधिकारियों ने

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सर्वोच्च सरकार से अनुमति मांगी किन्तु उन्हें केवल यह आदेश दिया गया कि इस सम्बन्ध में बल प्रयोग के स्थान पर लोगों के स्थान पर लोगों को केवल समझाया ही जा सकता है। ईसाई मिशनरियों की रिपोर्ट के आधार पर 1804 में कलकत्ता में 300 मील के क्षेत्र में अन्दर–अन्दर होने वाली स्त्रियों की न्यूनतम संख्या 300 थी।

18वीं शताब्दी के अन्त में बंगाल में सती–प्रथा के कुछ उदाहरण तो मिलते हैं, पर 19वीं शताब्दी के आरम्भ में यह अत्यधिक प्रचलन में आई। अतः इसी समय से बंगाल में इसे समाप्त करने के प्रयास किये जाने लगे। तत्कालीन गवर्नर जनरल वेलेजली ने 5 फरवरी 1805 को सदर निज़ामत अदालत के हिन्दू पण्डितों से सती प्रथा के सम्बन्ध में परामर्श किया। उन्होंने कहा कि उन विधवा स्त्रियों को सती नहीं किया जाना चाहिए जो गर्भवती हों, जिनकी आयु बहुत कम हो और जिनके छोटे बच्चों की देखभाल करने वाला और कोई न हो। शेष विधवा स्त्रियों का सती होना पुण्य का कार्य है। अदालत ने कहा कि जिन स्थानों में सती की घटनाएँ कम हुई हैं वहाँ तो इसे बन्द कर दिया जाना चाहिए।

इन सुधारों के आधार पर सरकार ने 1812, 1815 और 1817 में सती से सम्बन्धित कुछ आदेश प्रसारित किए किन्तु सती की घटनाएँ कम नहीं हुई। 1815 से 1817 के बीच अकेले बंगाल में ही सती की 864 घटनाएँ हुई और शेष भारत में 663। 1815 और 1817 के आदेशों के अनुसार कुछ श्रेणियों की विधवाओं को सती होने की मनाही कर दी गई थी। अतः 1818 में कलकत्ता के कुछ रूढ़िवादी हिन्दुओं ने सरकार के इन आदेशों के खिलाफ एक याचिका प्रस्तुत की। अगस्त 1818 में ही याचिका के विरोध में कलकत्ता के कुछ अन्य प्रतिष्ठित हिन्दुओं ने सती प्रथा को अमानुषीय प्रथा घोषित करते हुए सरकार को एक विरोध पत्र लिखा, जिसमें सरकार से यह आशा व्यक्त की गई कि वह इसे समाप्त करने का प्रयास करेगी।[25] ''इस विरोध–पत्र में सम्भवतः राजाराम मोहन राय सम्मिलित नहीं थे।[26]

ऐसा माना जाता है कि 1811 ई0 में राजाराम मोहन राय के भाई जगमोहन की मृत्यु के बाद जब उनकी विधवा भाभी को उनकी इच्छा के विरूद्ध जबरदस्ती सती कर दिया गया, तो यह करुणात्मक दृश्य उनके हृदय को छू गया और तभी से वे सती प्रथा का विरोध करने लगे।[27] 1818 में राजाराम मोहन राय ने सती–प्रथा का उन्मूलन के लिए एक विशाल आन्दोलन आरम्भ किया। उन्होंने कहा कि इसके जघन्य पहलू को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। जो स्त्रियाँ स्वेच्छा से सती नहीं होना चाहती हैं उन्हें बलपूर्वक अपने पति के शव के साथ बांध दिया जाता है और उनकी चीखों को दबाने के लिए घण्टे बजाए जाते हैं, स्त्रियों को मार–पीटकर नशे की दवा दिलाई जाती है। इस प्रथा के विरूद्ध समझाने के लिए उन्होंने बंगाली तथा अंग्रेजी में लेख एवं पुस्तकें भी लिखीं।[28] जनता के बीच सती प्रथा के विरुद्ध लोकमत तैयार करने के लिए राममोहन ने जो तरीके अपनाए थे वे इस प्रकार थे, बांग्ला और अंग्रेजी भाषा में पुस्तिकाएँ लिखकर प्रकाशित करना और मुफ्त बँटवाना, पत्र–पत्रिकाओं में लेखों और पत्रों के द्वारा प्रचार, श्मशान भूमि में स्वयं जाकर सती होने रोकने की चेष्टा और सरकारी हल्के में इस प्रथा के विरुद्ध अधिकारियों की पूरी मदद करना। राममोहन ने इस प्रथा के विरूद्ध सबसे पहली चर्चा 1917 में प्रकाशित "A Second defence of the monoteistical system of the Vedas" नामक ग्रन्थ में की।[29]

1818 में ही राममोहन राय ने सती प्रथा के समर्थक और विरोधी दो व्यक्तियों के मध्य वार्तालाप प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने इस अमानवीय प्रथा के विरोध में यह अपील की कि

कम से कम मानवता के नाते तो स्त्रियों को जीवित नहीं जलाया जाना चाहिए। परम्परावादी हिन्दुओं जिनके नेता राधाकांत देव थे, ने राममोहन राय का तीव्र विरोध किया। कुछ समय तक राय को इन विरोधों का सामना करना पड़ा किन्तु उन्होंने अपना आन्दोलन जारी रखा।[30] 1818 के अगस्त महीने में कलकत्ता के प्रगतिशील हिन्दू नागरिकों की ओर से बड़े लाट हेस्टिंग्स को इस प्रथा को बन्द करने के लिए आवेदन पत्र दिया गया। उन्होंने 1818 से लेकर 1831 तक बांग्ला में तीन और अंगरेजी में चार कुल मिलाकर इस विषय पर सात ग्रन्थ प्रकाशित किए। उनका अन्तिम अंग्रेजी ग्रन्थ 1831 में इंग्लैण्ड में प्रकाशित हुआ था। इसके अलावा ''बेंगाल गजेटि'' और अपनी पत्रिका ''संवाद कौमुदी'' के पृष्ठों को इस संघर्ष के हथियार के रूप में इस्तेमाल किया।[31]

सन् 1824 में पादरी मार्शमैन ने बिशप हैबर को लिखा था कि इस विषय में ब्राह्मण वर्ग अपनी लोकप्रियता खो चुका था और समाज का अधिकांश समृद्ध और शिक्षित उच्च वर्ग इस कुप्रथा के उन्मूलन में राममोहन राय के साथ था। राजा राममोहन राय ने हिन्दू शास्त्रों एवं ग्रन्थों के आधार पर सती–प्रथा को निन्दनीय व्यवस्था बताते हुए उसके विरूद्ध आवाज उठाई। उन्होंने कहा कि मनुस्मृति सहित सभी स्मृतियों, शास्त्रों, पुराणों के आधार पर यह प्रमाणित हो चुका है कि यह कुप्रथा धर्म–संगत नहीं थी। उन्होंने कहा कि स्वार्थी परिवार–जनों द्वारा इस प्रथा को जारी रखने का एक कारण यह भी था कि विधवाएँ अपने मृत पति की सम्पत्ति में कोई हिस्सा प्राप्त न कर सकें और उनके भरण–पोषण से भी छुटकारा मिल जाए।[32]

1828 में जब विलियम बैंटिक भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया तो कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने उसे सती–प्रथा को समाप्त करने के आदेश देकर ही भारत भेजा था। सदर निज़ामत अदालत के पाँचों न्यायाधीशों ने इस प्रथा को तत्काल समाप्त करने की सलाह दी, किन्तु राममोहन राय ने बैंटिक से कहा कि इसको कानून द्वारा नहीं बल्कि लोगों को समझाकर जनमत द्वारा ही समाप्त करना चाहिए।

8 नवम्बर, 1829 को बैंटिक ने परिषद में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि भारत में सती–प्रथा प्रमुखतया बिहार, बंगाल, उड़ीसा कलकत्ता में प्रचलित है।[33] लार्ड विलियम बैंटिक ने 4 दिसम्बर, 1829 को रेगुलेशन संख्या XVII पारित किया जिसके द्वारा सती होने का प्रयास अतः उसमें सहायता करने वाले पर हत्या के जुर्म में कार्रवाई होती थी।[34] सर्वप्रथम बंगाल में 4 दिसम्बर, 1829 को बैंटिक ने सती–प्रथा को अवैध घोषित कर दिया ओर इसके कुछ समय पश्चात् ही मद्रास ओर बम्बई में भी इसे निषिद्ध कर दिया गया तथा फिर शेष प्रदेशों में लागू किया गयां कट्टर रूढ़िवादी हिन्दुओं ने इस कानून को रद्द करवाने के लिए 19 दिसम्बर, 1829 को कलकत्ता के 800 धनी मानी व्यक्तियों के हस्ताक्षर सहित सरकार को एक आवेदन–पत्र प्रस्तुत किया। तब 14 जनवरी, 1830 को बैंटिक ने उनके नेता राधाकान्त देव से कहा कि यदि वे चाहें तो प्रिवी कौंसिल में अपील कर सकते हैं। राममोहन राय और उनके सभी सहयोगियों ने 14 जनवरी, 1830 को बैंटिक को सती–विरोधी कानून पास करवाने के लिए धन्यवाद–पत्र प्रेषित किया। रूढ़िवादी हिन्दुओं ने सम्राट की कौंसिल में इस कानून को समाप्त करने के लिए याचिका भेजी। राममोहन राय ने इसके विरोध में एक याचिका तैयार की और 1830 में जब वे इंग्लैण्ड के लिए रवाना हुए तो इसे साथ ले गए। हाऊस ऑफ कॉमन्स में उन्होंने अपनी यह याचिका प्रस्तुत की। रूढ़िवादी पक्ष की याचिका को अस्वीकृत कराने में राममोहन राय का अमूल्य सहयोग रहा। सती प्रथा विरोधी कानून पारित होने के कुछ वर्षों पश्चात् ही 1833 में उनकी मृत्यु हो गई। व्यापक स्तर पर इसके

विरूद्ध आन्दोलन चलाने का श्रेय राजा राममोहन राय को ही जाता है।[35]

इसके अतिरिक्त राममोहन राय ने बहु विवाह, बाल विवाह, जात–पात, अस्पृश्यता और स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार, जैसे कई एक सामाजिक अन्यायों के विरूद्ध आन्दोलन किया। वह स्त्रियों की स्वतन्त्रता में विश्वास करते थे।[36] उन्होंने बहुविवाह प्रथा के खिलाफ भी आवाज उठाई। उन्होंने कहा कि यह कानून बना दिया जाना चाहिए कि कोई भी हिन्दू पुरुष न्यायाधीश से लाइसेंस लिए बिना अपनी पहली पत्नी के जीवनकाल में दूसरा विवाह नहीं कर सकता।[37] विधवा–विवाह के पक्ष में उनका मत था कि बाल विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति मिलनी चाहिए। उन्होंने स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार दिलाने का पुरजोर प्रयत्न किया। वे स्त्रियों को हीन दृष्टि से देखने वालों के इस तर्क से सहमत नहीं थे कि स्त्रियों का ज्ञान सीमित होता है। उन्होंने शिक्षा का भी समर्थन किया। प्रौढ़ विधवाओं को भी शिक्षित किया जाए ताकि वे आत्मसम्मान का जीवन व्यतीत कर सकें। नारी जाति के प्रति सम्मान उनके व्यक्तित्व की एक अभिन्न विशेषता थी।[38]

उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक जीवन में राजाराम मोहन राय ने बहुविवाह, भ्रूण हत्या, बाल विवाह, विधवा विवाह इत्यादि का तीव्र विरोध किया। उन्हें 19वीं शताब्दी का सबसे बड़ा नारीवादी कहा जा सकता है। इस प्रकार राजा राममोहन राय ने समाज की उन समस्याओं को पहचाना, जो देश और समाज की प्रगति में बाधक बन रही थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वरे, डॉ0 एस0एल0, भारतीय इतिहास में नारी, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, संस्करण 2007, पृ0–157
2. वही, पृ0–158
3. वही, पृ0–159
4. प्रणवदेव, राजाराम मोहन राय, आर0बी0एस0एस0 पब्लिशर्स, जयपुर, प्रथम संस्करण–2004, पृ0–27–29
5. दत्त, के0सी0, राजराम मोहन राय (जीवन और दर्शन), लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2010, पृ0–73–74
6. वही, पृ0–75
7. वही, पृ0–77
8. प्रणवदेव, पृ0–79
9. मालती, के0एम0, स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010, पृ0–27
10. दत्त, के0सी0, पृ0–257
11. द्विवेदी, ओंकार नाथ, भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 1991, पृ0–16
12. घिल्डियाल, अच्युतानन्द, प्राचीन एवं आधुनिक भारतीय सामाजिक विचारक, विवेक घिल्डियाल, वाराणसी, पृ0–6
13. Majumdar, R.C., The History and Culture of the Indian people, Part-2 (1960), p.-567
14. विद्यालंकार, सत्यकेतु, प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन, सरस्वती सदन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण, पृ0–222
15. द्विवेदी, ओंकार नाथ, पृ0–161
16. विद्यालंकार, सत्यकेतु, पृ0–223
17. वही, पृ0–224
18. द्विवेदी, ओंकार नाथ, पृ0–161

19. विद्यालंकार, सत्यकेतु, पृ0–225
20. द्विवेदी, ओंकार नाथ, पृ0–162
21. विद्यालंकार, पृ0–225
22. चौबे, झारखण्ड, मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ0–67–68
23. वही, पृ0–69
24. वही, पृ0–70–72
25. Majumdar, R.C., Quoted in Gupta, V.P. and Gupta, Mohini: Raja Mohan Roy:, Vyakti Our Vichar, p.-30
26. कोलेट, मिस सोफिया, लाइफ एण्ड लेटर्स ऑफ राममोहन राय, पृ0–50–55
27. जैन, एम0एस0, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0–185
28. प्रणवदेव, राजाराम मोहन राय, आर0बी0एस0एस0 पब्लिशर्स, जयपुर, पृ0–81–82
29. विश्वास : राममोहन समीक्षा पृ0–343 में Reginald Herber के Narrative of a journey through the upper provinces of India from Culcutta to Bombay 1824-1825 से उद्धृत।
30. प्रणवदेव, पृ0–81
31. विश्वास : राममोहन समीक्षा पृ0–343 में Reginald Herber ds Narrative of a journey through the upper provinces of India from Culcutta to Bombay 1824-1825 से उद्धृत।
32. जैन, एम0एस0, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0–185
33. प्रणवदेव, पृ0–82
34. आनन्द सुगम, भारतीय इतिहास में नारी, साहित्य संगम, इलाहाबाद, 2007, पृ0–100
35. राममोहन राय द्वितीय जन्म वार्षिक समारोह समिति पुस्तिका, पृ0–761
36. दत्त, के0सी0, राजराम मोहन राय (जीवन और दर्शन), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2010, पृ0–257
37. 'Sati And the Sahstras', Quated in His life, writings and Speeches, p.- 7-10
38. प्रणवदेव, राजाराम मोहन राय, पृ0–85–86